पंडितखुशालचंदजी रचित

सुगंधदशमी व्रत कथा

सम्पादक

अर्चित जैन

श्रीयुत पंडित खुशालचंदजी विरचित

सुगंधदशमी कथा

सम्पादक

अर्चित जैन

प्रथम संस्करण: आचार्य कुन्दकुन्द जन्मतिथि (बसंत पंचमी)

२३ जनवरी २०२६, माघ शुक्ल पंचमी शुक्रवासरे

विक्रम संवत २०८२ वीर निर्वाण संवत २५५२

प्रिय पाठको !

अत्यन्त विनयपूर्वक चौकी या श्रुतपीठ पर विराजमान करके शरीर के नाभिस्थान से ऊपर ही रखकर इस ग्रन्थ का स्वाध्याय करना। किसी भी प्रकार से इसकी विराधना न करना। हाथ धोकर इसे छूना। मन और वचन को चुप करके एवं काया को संयमित करके अत्यन्त जागृत अवस्था में बैठकर इसे पढ़ना, लेटकर या कुछ खाते-खाते अथवा किसी से कोई सांसारिक चर्चा या वार्तालाप करते हुए नहीं। नीचे जमीन पर, बिस्तर पर अथवा तकिये पर इसे नहीं रखना और इसके पृष्ठ भी न फाड़ना। घर में स्वाध्याय करने के बाद अपने स्वाध्याय भवन या आलमारी में अत्यन्त सुरक्षा-पूर्वक इसे विराजमान करना। इन सच्चे जैन ग्रन्थों के अविनय से बहुत भारी पाप का बन्ध होता है।

मंगलाचरण

मोक्षमार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्मभूभृताम् ।

ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां, वन्दे तद्गुणलब्धये ॥

(**मोक्षमार्गस्य नेतारं**) मोक्षमार्ग के प्रवर्तक (**भेत्तारं कर्मभूभृताम्**) कर्मरूपी पर्वतों के भेदक (**ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां**) विश्व के (समस्त) तत्त्वों के जानने वाले (**वन्दे तद्गुणलब्धये**) उनके गुणों की प्राप्ति के हेतु मैं प्रणाम करता हूँ।

शुद्धि-पत्रक

प्रिय पाठक ! आपसे निवेदन है कि ग्रंथ पढ़ने से पहले इस शुद्धि-पत्रक के अनुसार ग्रंथ की अशुद्धियों को सुधार लें तथा यदि आपको अन्य कोई अशुद्धि या सुधार दिखे तो हमें सूचित करने का कष्ट करें।

पृष्ठ क्रमांक	पंक्ति क्रमांक	अशुद्ध	शुद्ध
(प्रकाशकीय) 5	7	परिचय	प्रकाशकीय
शास्त्राभ्यास...) 11	17	हे	है
(चरणानुयोग) 25	12	सक्य्क्तावी	सम्यक्त्वी
(चरणानुयोग) 25	13	की समूह	के समूह

जीमेल: be.jain.india@gmail.com

प्रस्तावना

हिन्दी सुगन्धदशमी कथा को रचना दोहा-चौपाई छन्दोंके १४३ पद्योंमें हुई है। चौपाइयोंके बीच-बीच में दोहे गाये हैं, किन्तु उनको संख्यामें एकरूपता नहीं है। उदाहरणार्थ आदि में आठ चौपाइयों के पश्चात् एक दोहा आया है। फिर पन्द्रह चोपाइयों (१०-२४) के पश्चात् दो दोहे आये हैं। फिर छह चोपाइयों के पश्चात् एक दोहा है। इस प्रकार अक्रम से रचनामें कुल एक सौ इक्कीस चोपाइयों और उन्नीस दोहे हैं। बीच में तीन पद्य (६७-६९) चौदह मात्रात्मक अन्य छन्द के हैं।

इस कथा के रचयिता ने अपना नाम ग्रन्थ के अन्त में खुस्याल (खुशाल या खुशालचन्द्र) प्रकट किया है। उन्होंने वहाँ यह भी कह दिया है कि उनकी इस रचना का आधार श्रुतसागर-कृत सुगन्धदशमी कथा है। चूंकि श्रुतसागरका काल १६वीं शती सिद्ध होता है, अतः प्रस्तुत रचना उससे पश्चात्कालीन है। इस कवि की और भी अनेक कृतियाँ पायी जाती है, जिनमें उनके रचनाकाल का भी उल्लेख मिलता है, व अन्य कुछ और भी परिचय। तदनुसार उनका उपनाम काला था, और व सांगानेर (राजस्थान) के निवासी थे। उन्होंने हरिवंशपुराणकी रखना सं० १७८० में, यशोधर चरित्रकी सं० १७८१ में, पद्मपुराण की १७८३ में, व उत्तरपुराणकी १७९९ में की थी। उनको अन्य रचनाएँ धन्यकुमार चरित्र, व्रतकथाकोश, चम्बुचरिख, पुज्यपाट आदि भी मिली है। आपकी भाषा में राजस्थानी व विशेषतः जयपुर की ढूँढारी भाषाकी पुट पायी जाती है। इस रचना का प्रस्तुत पाठ इसको एक मुद्रित प्रतिपर से तैयार किया गया है, जो कस्तूरचन्द छाबड़ा, भादवा (जयपुर) द्वारा संगृहीत तथा जिनवाणी प्रेस, कलकत्ता द्वारा दीपावली संवत् १९८६ में द्वित्तीय बार मुद्रित किया गया है। इसमें प्रस्तुत सम्पादक को केवल साधारण मुद्रणादि दोषों के संशोधन की आवश्यकता पड़ी है।

ॐ नमो वीतरागाय

सुगंधदशमी व्रत कथा

चौपाई

पंच-परमगुरु वंदन करूं। ता करि मम अघ-बंधन हरूं ॥।

सार सुगंध-दशैं-व्रत-कथा। भाषत हूँ भाषी जिन यथा ॥ १ ॥

अरु गुरु शारदके परसाद। कहस्यूँ भेद सार पूजादि ॥

जे भवि यह व्रत करि हैं सही। ते स्वर्गादिक पदवी लही ॥ २ ॥

सनमति-जिन गौतम मुनिराय। तिनके क्रम नमि श्रेणिकराय ॥

करत भयो इम थुति सुखकार। बिनकारण जगबंधु करार ॥ ३ ॥

भव्य-कमल प्रतिवोधन सूरि। सुक्तिपंथ निरवाहन धूरि ॥

श्रुत-वारिधिकों पोत समान। इंद्रादिक तुम सेवक जान ॥ ४ ॥

व्रत सुगंध-दशमी यह सार। कीनो किन किमि विधि विस्तार ॥

अर याकौ फल कैसो होय। मोकों उपदेशो सुनि सोय ॥ ५ ॥

मगध देशके तुम भूपाल। सुन व्रतकी सु कथा सुखकार ॥

यह परसनं तुम उत्तम कियो। मैं भाषूं जो जिन उत्वरयो ॥ ६ ॥

सुनत मात्र व्रतको विस्तार। पाप अनंत हरै ततकाल ॥

जे करताँ क्रमतें शिव जाय। और कहा कहिये अधिकाय ॥ ७ ॥

दोहा

जम्बूद्वीपविषैं यहै, भरतक्षेत्र शुभ जानि।

महा देश काशी लसै, पुर बानारस मानि ॥ ८ ॥

चौपई

पद्मनाभि जाकौ भूपाल। कीनो वसु मदको परिहार ॥

सप्त विसन तजि गुण उपजाय। ऐसे राज करै सुखदाय ॥ ९ ॥

श्रीयमती जाके वर नार। निज पतिकूँ अति ही सुखकार ॥

एक समय वनक्रीड़ा हेत। जावैथो निज भूति समेत ॥ १० ॥

पुर नजीकसौं ही जब गयौ। निज मनमाहीं आनंद लह्यौ ॥

तब ही एक मुनीश्वर आय। मास वास करिकैं तब ताय ॥ ११ ॥

असन काज आते मुनि जोय। रानीसों भाषै नृप सोय ॥

तुम जावो भोजन द्यो सार। कीजौ सुनिकी भक्ति अपार ॥ १२ ॥

यह सुनि रानी मन इम धरयौ। भोगनमें मुनि अंतर करयौ, ॥

दुखकारी पापी मुनि आय। मेरो सुख इन दियो गमाय ॥ १३ ॥

मनहीमें दूखी अति घनी। आज्ञा मान चली पतितनी ॥

जाय दियो भोजन ततकाल । आगैं और सुनो भूपाल ॥ १४ ॥

मुनि भूपतिके ही घर गयौ । रानी असन महा निंद दयौ ॥

कड़वी तूंबीको आहार । दियौ मुनीश्वरकौं दुखकार ॥ १५ ॥

भोजन कार चाले मुनिराय । मारर्ग-माहिं गहल अति आय ॥

परयौ भूमिपर तब मुनिराज । कीनो श्रावक देखि इलाज ॥ १६ ॥

तातैं मुनी महा दुख पाय । सून होय गये अधिकाय ॥

धिक्कारहि ताकूँ अति घणूं । दुष्ट स्वभाव अधिक जातणूँ ॥ १७ ॥

तवहीं वनसों आयो राय । सुनी बात राजा दुख पाय ॥

रानीसों खोटे वच कहे । वस्त्राभरण खोंसि कर लये ॥ १८ ॥

काढ़ि दई घर-बाहिर जबै । दुखी भई अति ही सो तबै ॥

कुष्ठातुर हो आरति कियौ । प्राण छोड़ महिपी तन लियौ ॥ १९ ॥

याकी मात भैंस मर गई । तव तिहिं अति दुर्बलता लई ॥

एक समै कर्दममधि जाय। मगन भई नाना दुख पाय ॥ २० ॥

तहांथकी देख्यो मुनि कोय । सींग हिलाए क्रोधित होय ॥

तव ही पंकविषै गड़ि गई । प्राण छोड़ि खरिणी उपजई ॥ २१ ॥

भई पांगुरी पिछले पायॅ । तब ही एक मुनीश्वर आय ॥

पूरव वैर सु मनमें ठयौ। तबहि कलुष परिणाम जु भयो॥ २२॥

दोहा

किये क्रोध मनमें घणूं, दई दुलत्ती जाय

प्राण छोड़ निज पापतैं, लई शूकरी काय॥ २३॥

स्वानादिकके दुःखतैं, भूखी प्यासी होय।

मरि चांडालीकैं सुता, उपजी निंदक लोय॥ २४॥

चौपई

गर्भ आवतां विनस्यौ तात। उपजंता तन त्याग्यौ मात॥

पालैं सुजन मरैं फुनि सोय। अरु आवत तनमें बदवोय॥ २५॥

इक जोजनलौं आवै बास। ताहिथकी आवै नहिं सांस॥

पंच अभख फल खावौ करे। ऐसी विधि वनमें सो फिरै॥ २६॥

तहाँ एक मुनि शिषयुत देखि। राग द्वेष तजि शुद्ध विशेष॥

ता वनमें आये गुण-भरे। लघु मुनि गुरुसों परसन करै॥ २७॥

वास निंद्य आवै अधिकाय। स्वामी कारण मोहि बताय॥

मुनि भाषैं सुन मन वच काय। जे प्राणी ऋषिकों दुखदाय॥ २८॥

ते नाना दुख पावै सही। मुनि-निंदा सम अघ कोउ नहीं॥

कन्या यह पूरव भव माहिं। मुनी दुखायोथो अधिकाय॥ २९॥

ता करि तिरयगमें दुख पाय। भई वधिककें कन्या आय॥

सो यह देखि फिरत है बाल। सुनि संशय भाग्यौ ततकाल॥ ३०॥

दोहा

फुनि गुरुसों इम शिष कहे, अब किम इन अघ जाय।

मुनि बोले जिनधर्मकौं, धारे पाप विलाय॥ ३१॥

चौपइ

गुरु-शिष-वचन सुता इम सुन्या। उपशम भाव सुखाकरे मुन्या॥

पंच अभख फल त्यागे जबै। असन मिलन लाग्यौ शुभ तवे॥३२॥

शुद्ध भावसौं छोड़े प्रान। नगरि उजेनी श्रेणिक जान॥

तहां दलिद्री द्विज इक रहै। पाप उदै करि बहु दुख लहै॥ ३३॥

ता द्विजकैं सो पुत्री भई। पिता मात यमके बस थई॥

तब यह दुखवंती अति होय। पाप समान न वैरी कोय॥ ३४॥

कष्ट कष्ट करि वृद्ध जु भई। एक समै सो वनमें गई॥

तहाँ सुदर्शन थे मुनिराय। यशःसेन राजा तहँ जाय॥ ३५॥

धर्म सुन्यो भूपति सुखकार। यह फिरि गई तहां तिहिं वार॥

अधिक लोक कन्या कूँ जोय। पाप थकी ऐसो पद होय॥ ३६ ॥

दोहा

जास समै यह कन्यका, घासपुंजे सिर धारि।

खड़ी मुनीश्वर वचन सुन, फुनि निज भार उतारि॥ ३७॥

चौपई

मुनि मुखतैं सुनि कन्या भाय। पूरव भव सुमरन तब थाय॥

याद की पिछली वेदना। मूर्छा खाय परी दुख घना॥ ३८ ॥

तब राजा उपचार कराय। चेत करी फुनि पूछि बुलाय॥

पुत्री तू ऐसी क्यों भई। सुनि कन्या तब यों वरनई॥ ३९ ॥

पूरव अव विरतंत बताय। मैं जु दुखायोथौ मुनिराय॥

करी तूंबिकाको आहार। दीनौ मुनिकौं अति दुखकार॥ ४० ॥

सो अघ अबलौं अति दुख दहै। इम मुनि नृप मुनिवरसौं कहै॥

यह किहँ विधि सुख पावै अबै। सो मुनिराज बखानै तबै॥ ४१ ॥

जब सुगंधदशमी व्रत धरै। तब कन्या अघ-संचय हरै॥

कैसी विधि याकी मुनिराय। तब ऋषि भादव मास बताय॥ ४२ ॥

सुदि पंचमि दिनसौं आचरै। यथाशक्ति नवमीलों करै॥

दशमी दिन कीजै उपवास। ता करि होय अधिक अघ नास॥ ४३ ॥

पूजै चौवीसौं जिन सार। दश पूजा करि वसु परकार॥

दश स्तोत्र पढ़िये मनलाय। दश मुखको घट सार बनाय॥ ४४ ॥

तामें पावक उत्तम धरै। धूप-दशांग खेय अघ हरै॥

सप्त धान्यको साथी सार। करि तापर दश दीपक धारि॥ ४५ ॥

ऐसे पूज करै मनलाय। सुखकारी जिनराज बताय॥

तातैं यह विधि पूजा करै। सो भवि जीव भवोदधि तरै॥ ४६ ॥

दोहा

जिनकी पूज समान सुख, हुआ न हैसी कोय।

स्वर्गादिक पदकौं धरै, फुनि दे है शिव जोय॥ ४७ ॥

चौपइ

दश सम्बतसरलौं जो करै। ताहींकै निजगुण विस्तरै॥

करै बहुरि उद्यापन राय। सुनहु सु विधि तुम मन वच काय॥ ४८ ॥

महाशांति अभिषेक करेय। जिन आगें वर पुष्प धरेय॥

जो उपकरण धरै जिनथान। ताकौ भेद सुनौ चित आन॥ ४९ ॥

दश जु वरनकौ चँदवा लाय। सो जिनबिम्बनपर तनवाय॥

और पताका दश ध्वज सार। बाजै घंटा नाद अपार॥ ५० ॥

मुक्त-मालकी शोभा करै। चामर युगल अनुपम धरै॥

और सुनो आगैं मनलाय। प्रभूकी भक्ति किये सुख पाय॥ ५१ ॥

धूपदहने दस धरै जु आन। सिंहपीठ आदिक पहिचान॥

इत्यादिक उपकरण मँगाय। भक्तिभावयुत भव्य चढ़ाय॥ ५२ ॥

दान अहार आदि चउ देय। ता करि भवि अधिको फल लेय॥

आर्याकौ अम्बर शुभ देउ। शांस्त्र कमंडल भेंट करेहु॥ ५३ ॥

यथायोग्य मुनिकौं दे दान। इत्यादिक उद्यापन जान॥

जो न इसी है शक्ति लगार। थोरोही कीजे हित धार॥ ५४ ॥

जो न सर्वथा घरमें होय। तो दूनो कीजे व्रत सोय॥

पण व्रत्तकौं करिये मन लाय। जातैं स्वर्ग मोक्ष फल थाय॥ ५५ ॥

दोहा

शाकपिंडके दानतें, रत्नवृष्टि है राय।

यहां द्रव्य लागै कहां, भावनिको अधिकाय॥ ५६ ॥

तातें भक्ति उपायकैं, स्वातमहित मन ल्याय।

व्रत कीजे जिनवर कह्यो, इम सुनकरि तब राय॥ ५७ ॥

चौपई

द्विज कन्याकौं भूप बुलाय। व्रत दशमी सुगंध वरलाय॥

राय सहाय थकी व्रत करयौ। पूरव पाप-बंध सव हरयौ॥ ५८ ॥

उद्यापन करि मन वच काय। और सुनो आगें मन लाय॥

एक कनकपुर जानो राय। नाम कनकप्रभ तसु भूपाल॥ ५९ ॥

नारि कनकमाला अभिराम। राजश्रेष्ठि इक जिनदत नाम॥

जाकैं जिनदत्ता वर नार। तिहि ताके लीनो अवतार॥ ६० ॥

तिलकमती नामा गुण भरी। रूप सुगंध महा सुंदरी॥

क्योंइक पाप उदय फिरि आय। प्रान तजे ताकी तब माय॥ ६१ ॥

जननी बिनु दुख पावै बाल। और सुनो श्रेणिक भूपाल॥

जिनदत यौवनमय थौ जबै। अपनो व्याह विचारयो तबै॥ ६२ ॥

गोवरधनपुर नगर सुजान। वृषभदत्त वाणिज तिहिं थान॥

ताके एक सुता शुभ भई। बन्धुमती तसु संज्ञा दई॥ ६३ ॥

तासों कीनो श्रेष्ठि विवाह। बाजा वाजे अधिक उछाह॥

परणि सु घर ल्यायौ सुखसार। आगे और सुनो विस्तार॥ ६४ ॥

दोहा

सुख भोगत कन्या भई, ताकों लखि तस माय।

नाम धरयो तव मोदतैं, तेजोमती सुभाय॥ ६५॥

चाल-छंद

प्यारी माताकों लागै। नहिं तिलकमतीसों रागै॥

नाना विधि करि दुख द्यावै। ताके मनमें नहिं भावै॥ ६६॥

तब तात सुता सु निहारी। कन्या यह दुखित विचारी।

तब दासी आदिक नारी। तिनसों इम श्रेष्ठि उचारी॥ ६७॥

याकी सेत्रा सुखकारी। कीजौ तुम भक्ति विचारी।

ऐसे सुनते सुख पावै। तव नीकी भांति खिलावे॥ ६८॥

चौपई

एक समै कंचनप्रभ राय। द्वीपांतर जिनदत्त पठाय॥

नारीसों तव भापै नाय। हमें राय द्वीपें जु खिनाय॥ ६९॥

तातें एक सुनो तुम बात। यह दो परण्याजो हरषात॥

अष्ट गुणांयुत जो वर होय। इनकै करि दीजो अवलोय॥ ७०॥

इम कहि द्वीप चल्यो ततकाल। और सुनो श्रेणिक भूपाल॥

आवै करन सगाई कोय। तिलकमती जांचै तब सोय॥ ७१ ॥

बंधुमती भाषै जब आय। यामें औगुण हैं अधिकाय॥

मम पुत्री गुणवंती घणीं। रूप आदि शुभ लक्षण भणी॥ ७२ ॥

तातैं मो कन्या शुभ जानि। वर नछत्र व्याहो तुम आनि॥

ते इनकी माने नहिं बात। तिलकमती जांचे शुभ गात॥ ७३ ॥

कहे फेरि सो योंही सही। मनमें कपटाई धरि लई॥

व्याह समै कन्या मम सार। करदेस्यूं व्याहित जिहिं वार॥ ७४ ॥

करी सगाई हर्षित होय। व्याह समे आये तब सोय॥

बंधुमती फेराकी वार। तिलकमती बहु भांति सिंगारि॥ ७५ ॥

घड़ी दोय रजनी जब गई। तिलकमतीको निज सँग लई॥

जब हिंमसान भूमि-मधि जाय। पुत्रीको तिहिं थान पठाय॥ ७६ ॥

तहां दीप जोए शुभ चार। पूरे तेल उद्योत अपार॥

चौगिरदा दीपक चउं धरे। मध्य तिलकमति थिरता करे॥ ७७ ॥

तिलकमतीसों भाखी जहाँ। तव भरता आवेगो यहां॥

ताहि विवाहि आवज्यो वाल। इम कहकरि चाली ततकाल॥७८॥

आधी रात गई तव राय। महल थकी लखि वितरक लाय॥

देवसुता वा यक्षिनि कोय। ना जानै वा किन्नरि होय॥ ७९ ॥

कै यह नारी यहां को आय। ऐसी विधि चितवन करि राय॥

हस्त खड़ग ले चाल्यौ तहां। तिलकमती तिष्ठैथी जहां॥ ८० ॥

दोहा

जाय पूछियौ राजई, तू कुर्ण है इह थान।

तिलकमती सुनिकें तबै, ऐसी भांति वखान॥ ८१ ॥

भूपति मेरे तातकूं, रतन सु द्वीप पठाय।

मोकूं मम माता यहां, थापि गई अब आय॥ ८२ ॥

चौपई

भाखि गई इन थानक कोय। आवैगो तो भरता सोय॥

यातें तुम आये अब धीर। मैं नारी तुम नाथ गहीर॥ ८३ ॥

सुनि राजा तब व्याह सु करयौ, रैनि रह्यौ तेठें सुख धरयौ॥

राजा प्रात समय अवलोय। निज-मंदिरकों आवन होय॥ ८४ ॥

तिलकमती ऐसे तब कही, अबतौ तुम मेरे पति सही॥

सर्प जेम डसि जावो कहाँ। सुनि इम भाषे भूपति तहां॥ ८५ ॥

निशिकी निशि आस्यूं तुम पास। तूं तौ महा शर्मकी राशि॥

तिलकंमती पूछे सिर नाय। कहा नाम तुम मोहि बताय॥ ८६॥

राजा गोप्य कह्यो निज नाम। इम सुनि त्रिय पायो सुख घाम॥

यों कहि अपने थानक गयो। तबसें ही परभात सु भयो॥ ८७॥

बंधुमती कहि कपट विचारि। तिलकमती तो है दुखकार॥

व्याह समै उठि गइ किह थान। जनजनसों पूछे दुख मान॥ ८८॥

दोहा

देखो ऐसी पापिनी, गई कहां दुखदाय।

ढूंढत ढूंढत कन्यका, लखी मसानै जाय॥ ८९॥

जाय कहै दुखदा सुता, इह थानक किम आय।

भूत प्रेत लाग्यौ कहा, ऐसी विधि वतलाय॥ ९०॥

चौपई

तिलकमती भापै उमगाय। तैं भाख्यो सो कीनो माय॥

बंधुमती करि तुंग प्रकार। देखो है यह असति उचार॥ ९१॥

जानूं कहा करै इह आय। व्याह समै दुख दिया अघाय॥

तेजोमती विवाहितकरी। साहाकी समया नहिं टरी॥ ९२॥

खिजि भाखी उठ चल घर अबे। ले आई अपने घर तबै॥

तिलकमतीसों पूछै मात । तैं कैसो वर पायो रात ॥ ९३ ॥

सुता कहै वरियौ हम गोपि । रैनि परणि परभात अलोपि ॥

बंधुमती भाषी ततकाल । री तैं वर पायो गोपाल ॥ ९४ ॥

दोहा

घर इक गेह समीप थौ, सो दीनों दुख पाय ।

नितप्रति रजनीके विषैं, आवै तहाँ सु राय ॥ ९५ ॥

दीप निमित नहिं तैल दे, तबहि अँधेरे माहिं ।

राजा तेठैं ही रहै, सुख पावै अधिकाय ॥ ९६ ॥

चौपाई

केतेइक दिन ऐसे गये । बंधुमती तब यों वच चये ॥

तोहि गवालातें कहि जाय । दोय बुहारी तो दै लाय ॥ ९७ ॥

तिलकमती आरें कर लई । रात भये निज पतिपैं गई ॥

करि क्रीड़ा मुख वचन उचारि । नाथ सुनो अरदास हमारि ॥ ९८ ॥

युगल बुहारी मेरी मात । जॉची है तुमपे हरपात ॥

यातैं ला दीजो तुम देव । अंगी कीनो भूपति एव ॥ ९९ ॥

सभा जाय बैठो तब राय । स्वर्णकार तब सार बुलाय ॥

तिनकों कही बुहारी दोय। अब करि द्यो जो उत्तम होय॥ १०० ॥

इम सुनि तवहि सु कंचनकार। वेगि गये घर ले अधिकार॥

स्वर्न सींक सबके मनमोह। रत्नजड़ित मूठो अति सोह॥ १०१ ॥

षोड़श भूषनं और मंगाय। डाबामें धरि चाल्यो राय॥

एक वेष करि उत्तम लयो। रजनी समय नारि ढिग गयो॥ १०२ ॥

रत्नजडितकी कोर जु सार। शोभै सारीकें अधिकार॥

भूषन वेष दये नृप जाय। दोय बुहारी लखत सुहाय॥ १०३ ॥

नारि चरन नृपके तब धोय। सिर केसनितें पूंछि बहोय॥

क्रीड़ाकरि बहुते सुख पाय। प्रात समैं नृप तो घर जाय॥ १०४ ॥

तिलकमती अति हरषित होय। जाय दई सु बुहारी दोय॥

और दिखाये भूषन वेष। भाई देख्यौ सार लवेषं॥ १०५ ॥

मनमें दूखि वचन इम कह्यो। तेरो भरता तसकर थयो।

राजाके भूषन अरु वेष। लाय दये तोकूं जु अशेष॥ १०६ ॥

हम सबकों दुख द्यासी सोय। इम कहि खोंसिलये दुख होय॥

यह दलगीर भई अधिकाय। रात विषैं पतिसों कहि जाय॥ १०७ ॥

भूषन वेष खोंसिलये माय। निज काठें राखे दुख पाय॥

राय तबै सम्बोधी जोय। मन चिंता राखो मति कोय॥ १०८ ॥

और घणें हूँ देस्यूँ लाय। इम सुनि तिलकमती सुख पाय॥

द्वीप थकी जिनदत्त जु आय। बंधुमती पतिसों बतलाय॥ १०९ ॥

तिलकमतीके अवगुण घणां। कहा कहूँ पति अव वा तणाँ॥

व्याह समै उठगइ किहँ थान। परण्यो चोर तहां सुख ठान॥ ११० ॥

सो तसकर भूपतिकै जाय। भूषन वेष चोर करि ल्याय॥

याकूं वह दीने तब आय। खोंसि रखे मो ढिग मैं ल्याय॥ १११ ॥

श्रेष्ठि देखि कंपित मन माहिं। तव ही राजस्थानक जाय॥

घरे जाय राजा के पास। सब विरतंत कह्यो सुनि राय॥ ११२ ॥

कह्यो वेष भूषन तौ आय। परिहरि चोर आनि द्यो ल्याय॥

यह विधि श्रेष्ठि सुनी नृप बात। चाल्यौ निज घर कंपित गात॥ ११३ ॥

साह सुतासों यह वच चयो। तैं यह हमकों कुण दुख दयो॥

पतिकूं जानै है कै नाहिं। कह्यौ दीप बिन जानों काँहिं॥ ११४ ॥

कबहुँ दीपक हेत सनेह। मोकूँ मम माता नहिं देय॥

श्रेष्ठि कहै किम ही विधि जान। तिलकमती जब बहुरि बखानि॥ ११५ ॥

इक विधि करि मैं जानत तात। सो यह सुनौ हमारी बात॥

जब पति आते मो ढिग जहां। तब उन पद धोवतथी तहां॥ ११६॥

धोवत चरन पिछानूं सही। और इलाज यहां अब नहीं॥

श्रेष्ठि कही भूपतिसों जाय। कन्या तो इम भांति बताय॥ ११७॥

ऐसे सुनि तब वोल्यो भूप। यह तो विधि तुम जानि अनूप॥

तसकर ठीक करनके काज। तुम घर आवेंगे हम आज॥ ११८॥

श्रेष्ठि तबैं परसन अति भयो। जाय तयारी करतो भयो॥

तब राजा परिवार मिलाय। तवही श्रेष्ठितनैं घर आय॥ ११९॥

प्रजा जु सकल डकट्ठी भई। तिलकमती बुलवाय सु लई॥

नेत्रं मूंदि पद धोवत जाय। ये भी नहिं पति मेरो आय॥ १२०॥

जब नृपके चरनाम्बुज धोय। कहत भई ये ही पति होय॥

राजा हँसि इम कहतो भयो। इन हमको तसकर कर दयो॥ १२१॥

तिलकमती ऐसे फुनि कही। नृप हो वा अनि हो इम सही॥

लोक हँसन लागे जिंह वार। भूप मनै कीनो ततकाल॥ १२२॥

वृथां हांस्य लोकां मति करौ। मैं ही पति निश्चय मन धरौ॥

लोक कहैं कैसे यह बनी। आदि-अंतलों भूपति भनी॥ १२३॥

तब ही लोक सकल इम कह्यौ। कन्या धन्य भूप पति लह्यौ॥

पूरव इन व्रत कीन्यौ सार। ताको फल यह फल्यौ अवार॥ १२४॥

भोजन अंतर करि उत्साह। श्रेष्ठि कियो सब देखत व्याह॥

ताकूं पटरानी नृप करी। भूपति मनमें साता धरी॥ १२५॥

एक समै पतियुत सो नार। गई सु जिनके गेह-मँझार।॥

वीतराग मुख देख्यौ सार। पुन्य उपायो सुख दातार॥ १२६॥

सभा विवें श्रुतसागर मुनी। बैठे ज्ञान-निधी बहु गुनी॥

तिनकों वंदि परम सुख पाय। पूछें मुनिवरकौं इम राय॥ १२७॥

पूरव भव मेरी पटनारि। कहा सु व्रत कीनौ विधि धार॥

जाकरि रूपवती इह भई। अधिक संपदा शुभ करि लई॥ १२८॥

पूरवयोग सकल विरतंत। मुनिनिंदादिक सर्व कहंत॥

अस सुगंध-दशमी-व्रत सार। सो इन कीन्हों सुखदातार॥ १२९॥

ताको फल यह जानौ सही। ऐसे श्रुतसागर मुनि कही॥

तबही आयौ एक पुमान। जिन श्रुतगुरु वंदे तजि मान॥ १३०॥

मुनिकूँ नमस्कारकरि सार। फेरि तहां नृप-देवि निहार॥

तिलकमतीके पावाँ परयो। अरु ऐसे सु वचन उच्चरयो॥ १३१॥

दोहा

स्वामिन ! तो परसादतैं, मैं पायौ फल सार।

व्रत सुगंधदशमी कियो, पूरव विद्या धारि॥ १३२ ॥

ता व्रतके परभावतें, देव भयो मैं जाय।

तुम मेरी सहधर्मिणी, युग क्रम देखन आय॥ १३३ ॥

चौपाई

श्रुति कर सुर निज थानक जाय। लोकाँ यह लखि निश्चय लियो॥

धनि सुगंधदशमि व्रतसार। ताके फल जु अनन्त अपार॥ १३४ ॥

तब सबही जन यह व्रत धरयो। अपनो कर्म महामल हरयो॥

तिलकमती कंचनप्रभ राय। मुनिकूं नमि अपने घर जाय॥ १३५ ॥

देती पात्रनकौं शुभ दान। करती जिनकी पूज अमान॥

पालै दरशन शील सुभाय। अरु उपवास करै मन लाय॥ १३६ ॥

पतिव्रतागुण पालनहारि। पुनि सुगंधदशमी व्रत धारि॥

अन्त समाधि थकी तजि प्रान। जाय लह्यो ईशान सु थान॥ १३७ ॥

सागर दोय जहाँ थिति लही। शुभतैं भयो सुरोत्तम सही 11

नारी लिंग निंद्य छेदियो। चय, शिववासी जिन वरनियो॥ १३८ ॥

जहाँ देव सेवा बहु करैं। निर्मल चमर तहाँ सिर ढरैं॥

और विभव अधिकौ जिह थान। पूरव पुन्य भयो नित आनि॥ १४१ ॥

इह लखि सुगंध दशैं व्रतसार। कीजे हो ! भवि शर्म विचार॥

जे भवि नरनारी व्रत करें। ते संसार समुद्रसों तरें॥ १४२ ॥

दोहा

श्रुतसागर ब्रह्मचारि को ले पुरव अनुसार।

भाषा सार बनायकें। सुखित खुस्याल अपार॥ १४३ ॥

कथा (हिन्दी अनुवाद)

- आर्यिका ज्ञानमती

कथा पूर्व रूप (पद्य ०१ – ४८)

बसन्त ऋतु धरती को पीत वर्ण से आच्छादित करके अपनी आभा बिखेर रही है, सरसों के खिले पुष्प नर-नारियों का मन आकृष्ट कर रहे हैं. बसन्तक्रीड़ा के इच्छुक दम्पत्ति वन की और विहार कर रहे हैं। काशीनगरी के राजा पद्मनाभ अपनी रानी श्रीमती को साथ लेकर बसन्तक्रीड़ा की इच्छा से वन को जा रहे थे कि उन्हें नगर के द्वार पर ही एक मासोपवासी मुनिराज के दर्शन हुए। राजा ने श्रद्धापूर्वक मुनिवर के दर्शन किए और आहार की बेला जानकर उन्होंने तत्काल रानी श्रीमती को आदेश दिया। हे देवि! हमारे महान् पुण्योदय से मासोपवासी मुनिराज हमारी नगरी में पधारे हैं, इन्हें आहारदान देकर हमें पुण्योपार्जन करना चाहिए। अतः तुम राजभवन वापस जाओ और मुनि को विधिपूर्वक आहार कराओ। रानी को इस प्रकार आज्ञा प्रदान कर राजा स्वयं वन को चले गए। विषय भोगों में उत्पन्न हुए विघ्न के कारण रानी क्षुब्ध हो उठी। राजाज्ञा को टालने की तो उसमें सामर्थ्य नहीं थी, किन्तु राजभवन जाते हुए वह मन में विचारने लगी - मेरी वनक्रीड़ा को नहीं सहन करने वाला यह पापी कहां से आ गया, अभी में इसे ऐसा मजा चखाऊंगी कि इसकी जीवन लीला समाप्त होने में देर न लगेगी। कर्मों की गति बड़ी विचित्र होती है। तीव्र पापकर्म के उदय से उसने वीतरागी मासोपवासी मुनिराज के प्रति दुर्भाव किए और घर जाकर उसने कड़वी तूमड़ी से मिश्रित आहार बनाकर मुनिराज को दिया। मुनि ने उसे समताभाव से ग्रहण कर वन की ओर प्रस्थान कर दिया। ओह ! उस तीव्र वेदना को सहन करने वाले मुनिराज धन्य हैं जिन्होंने मृत्युशय्या प्राप्त कराने वाले के प्रति भी दुर्भाव नहीं किया तथा शरीर की अन्तिम स्थिति जानकर सल्लेखना ग्रहण करने जा रहे थे किन्तु मार्ग में ही उनके शरीर में असह वेदना उत्पन्न हो उठी अतः एकदम शिथिल होकर मुनिराज भूमि पर गिर पड़े। काशी नगरी के श्रद्धालुओं में भगदड़ मच गई कुछ लोग मुनिराज को उठा कर जिनमंदिर में लाए

और शीतोपचार आदि करने लगे। बारह भावनाओं का चिन्तवन करते हुए मुनि महाराज ने तो समाधि ले ली और कुछ ही क्षणों में वे स्वर्ग सिधार गए किन्तु नगरी में नर - नारियों का हाहाकारपूर्वक रुदन चलने लगा। सभी रानी श्रीमती को गालियां देते हुए अपमानजनक शब्द कहने लगे धिक्कार है इस महारानी की पदवी को, जिसके अभिमान ने ऐसे महासन्तों के जीवन के साथ खिलवाड़ कर दिखाया है।

धिक्कार है ऐसे पृथ्वीपति को, जिसकी प्राणप्रिया रानी ने ऐसे मुनिराज को कुत्सित अन्न का भोजन कराकर इस प्रकार पीड़ित किया है। नगर में कोलाहल मचा हुआ था तभी भृत्यों के द्वारा समाचार मिलने पर राजा वन से वापस आ गए और उन्होंने अपनी रानी के कुकृत्य की कथा सुनी। मुनिराज की स्थिति देखकर राजा को रानी पर बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ, उन्होंने तत्काल ही रानी के सब आभूषण उतरवा लिए और अत्यन्त कठोर शब्दों में उसे प्रताड़ित किया। हे दुराचारिणी ! मैं तेरे प्रति जीवन में कभी ऐसा दुष्कृत्य नहीं सोच सकता था, तूने राजमद में चूर होकर जो महान दण्डनीय अपराध किया है उसके लिए मृत्युदंड ही तुझे उचित था किन्तु स्त्री होने के कारण में तुझे मृत्युदंड देकर अपने देश का अपमान नहीं करना चाहता हूँ। तू मेरी दृष्टि से शीघ्र दूर हो जा, पुनः भृत्यों को आज्ञा देकर राजा ने उसे राजभवन से बहिष्कृत कर दिया। क्रोध में आकर रानी ने अपराध कर ती डाला किन्तु उसे इस प्रकार के प्रतिफल की आशंका नहीं थी। कर्मों की विचित्र विडम्बना शीघ्र ही उसे दृष्टिगोचर होने लगी। जो रानी समस्त अन्तःपुर में पूजी जाती थी उसे स्वभावतः अपने इस अपमान से बड़ा दुःख हुआ, पुनः शीघ्र ही वह गुरुनिन्दा के प्रभाव से कुष्ठ रोग से ग्रसित हो गई। दर-दर की भिखारिन बनी हुई रानी पश्चाताप की अग्नि में झुलसती रही और अन्त में संक्लेश भावों से मरकर भैंस हो गई जहां पैदा होते ही उसकी माता मर गई। एक दिन वह ज्यों ही अपनी प्यास बुझाने के लिए तालाब में प्रविष्ट हुई, त्यों ही कीचड़ में फंस गई। उसी दशा में उसे एक नग्न मुनि के दर्शन हुए किन्तु पूर्वभव के बैर के कारण उसे मुनि पर बड़ा क्रोध आया और वह मुनि को मारने की इच्छा से अपने सींगों को हिलाने लगी। इसका परिणाम यह हुआ कि तह और भी गहरे कीचड़ में फंस कर मर गई। अगले भव में भी मुनि के प्रति किए गए दुर्भाव के फलस्वरूप उस रानी का जीव भैंस के बाद मरकर गधी हो गया। इस पर्याय में भी दिगम्बर मुनि को देखते ही उसके भावों में शान्ति न हो पाई, प्रत्युत उन्हें कष्ट पहुँचाने की भावना जाग्रत हो गई। एक बार उस नगर में एक दिगम्बर मुनिराज आहार चर्चा की जा रहे

थे उन्हें देखकर उस दुष्ट गधी ने रेंकते हुए अपनी पिछली लातों से मुनि को चोट पहुँचाई। आर्तध्यानपूर्वक जीवन बिताने के पश्चात् वह पापिनी गधी मरकर शूकरी हो गई और विष्टा खाती हुई फिरने लगी। अनेक कुत्ते उसके पीछे लगे रहते थे। वह भूख प्यास से पीड़ित रहती थी। उस शूकरी की माता पहले ही मर चुकी थी। वह भी दुख भोगते हुए मरण को प्राप्त हो गई। शूकरी की पर्याय से निकलकर रानी का जीव सांभरी हुआ, पुनः मरकर एक चाण्डालिनी के गर्भ में आ गया। यहां भी उत्पन्न होते ही तत्काल उसकी माँ की मृत्यु हो गई और उसका पिता भी तुरन्त भर गया उस चाण्डाल कन्या के शरीर से एक योजन तक फैलने वाली महादुर्गन्ध निकलती थी, जिसे कोई भी सहन नहीं कर पाता था। इस विपत्ति के कारण उसके परिवार के अन्य बन्धुओं ने भी उसे घर से निकाल दिया।

दुर्गन्धा नाम की उस बालिका को गांव का कोई भी प्राणी अपने पास टिकने नहीं देता था। कभी तो उसके नहीं हटने पर लोग धक्के मारकर उस पापिन को दूर भगाते, कभी पुनः वापस आ जाने पर उस पर गाँव वालों द्वारा गालियों, पत्थरों एवं डण्डों की बौछार होने लगती थी। वह बेचारी कन्या अपने दुर्भाग्य को कोसती हुई रोती रहती। कभी वह वनों में विचरण करती-करती वृक्षों के नीचे अकेली बैठकर ऐसा करुण क्रन्दन करती कि मनुष्य क्या पेड़ पौधे भी सिहर उठते थे। हे माँ ! तू मुझे छोड़कर कहां चली गयी, अपने जाने से पहले मुझे क्यों नहीं मार दिया, मैंने कभी तेरा मुंह भी नहीं देखा। हाय। मैंने कौन से ऐसे पाप किए हैं, जिनके कारण माता-पिता का सुख मुझसे छिन गया और मेरे शरीर से इतनी दुर्गन्ध आती है। है देव ! मेरा मरण भी शीघ्र क्यों नहीं हो रहा है? आखिर में कब तक इन दुखों को सहन करती रहूंगी। इस प्रकार रो-रोकर वह मूर्छित होती और पुनः होश में आती तो किसी तरह धैर्य धारण करके वन के फल, फूल एवं झरने का पानी पीकर भूख की उपशान्ति कर लेती थी भाग्य परिवर्तन का पराम्भिकरण दुख भी मानव की सम्पत्ति है तू दुख से क्यों घबराता है। इस उपदेश को सुनाने वाले एक महामुनिराज एक दिन अपने शिष्य के साथ वहां से निकले। मुनिराज की दृष्टि उस कन्या पर पड़ी, तभी शिष्य ने उसकी दुर्गन्ध पाकर गुरु से प्रश्न किया है गुरुदेव ! यह महादुर्गन्ध कहां से आ रही है? यहां तो एक क्षण भी टिक पाना असंभव दिखाई दे रहा है, अतः भगवन् ! यहां से शीघ्र प्रस्थान करना उचित है। तब गुरुदेव ! अपनी मधुर वाणी में शिष्य को समझाते हैं. हे साधुः सुगन्ध और दुर्गन्ध दोनों पुदगल के ही गुण हैं। अतः इसमें हर्ष विषाद की परिणति करना आपके लिए उचित नहीं है। आप इन दोनों में समताभाव रखकर कर्मसिद्धान्त को समझने का प्रयास कीजिए। स्वामी ! यह किसके और

किन कर्मों के फल का प्रतीक महादुर्गन्ध है। आप इसे बताने की कृपा कीजिए। इस प्रकार पुनः जिज्ञासापूर्ण प्रश्न सुनकर उन अवधिज्ञानी मुनिराज ने बताया है वत्स ! सामने यह जो चाण्डाल बालिका दिखाई दे रही है, यह कभी काशी देश की महारानी थी किन्तु उस जन्म में इसने एक मुनिराज का अनादर करके कड़वी तूमड़ी का आहार उन्हें दिया था। अतः उस पाप के फलस्वरूप संसार की अनेक नीच योनियों में परिभ्रमण करते हुए अब इसने चाण्डाल बालिका के रूप में जन्म पाया है और इसी की यह दुर्गन्ध फैल रही है। इस बात को सुनकर शिष्य ने अपने गुरु से फिर पूछा- शास्त्र समुद्र के पारगामी हे नाथ ! मुझे यह भी बतलाइए कि अब यह बालिका किस प्रकार इस संसार रूपी सागर को तिर सकेगी, इसके दुःखों का अन्त कैसे होगा? हे करुणा के सागर ! आप ही इसके दुःखों को हरने में समर्थ हैं अतः कोई उपाय बताकर इसका कल्याण कीजिए। दया से इन वचनों को सुनकर निर्ग्रन्थ मुनिराज बोले- हे मुने ! तुम तो जानते ही कि अनन्त संसार में दुःख भोगते हुए जीवों को जिनधर्म ही पार कर सकता है। इस प्रकार गुरु और शिष्य के बीच हुए प्रश्नोत्तरों को उस दुर्गन्धा बालिका ने सुन लिया, तब पापों से उसे कुछ ग्लानि हुई। आयु के अन्त में शुभ भावों से मरकर उज्जयिनी नगरी के एक गरीब ब्राह्मण के घर में उस बालिका ने जन्म लिया । उसके शेष कर्मों के पाप से अभी भी उसके शरीर की दुर्गन्ध एक कोस तक जाती थी। जन्म होते ही माता-पिता का मरण हो जाने से वह भूख-प्यास के थोर कष्टों से पीड़ित रहने लगी। दिगम्बर मुनि के दर्शन उस रानी के जीव को प्रत्येक भव में होते रहे किन्तु होनहार की बात है कि कभी उन्हीं के अपमान से भव-भव में घोर कष्ट सहन किये और जब उसके पाप कुछ शान्त हुए तो मुनि दर्शन से उसके जीवन में क्रमशः उत्थान प्रारम्भ हो गया। वह ब्राह्मण कन्या पुनः दुर्गन्धा के नाम से ही पुकारी जाने लगी। किसी तरह जीवन के क्षणों को बिताते हुए दुर्गन्धा अपने भाग्य को कोस रही थी कि तभी एक दिन उसी उज्जयिनी नगरी के राज यशः सेन को वनपाल ने आकर खबर दी कि नगर के उद्यान में महामुनि के संघ का पदार्पण हुआ है। सौ मुनियों के मंगल आगमन का समाचार जानकर राजा अपनी महारानी के साथ संघ के दर्शन हेतु महल से निकल पड़े। उद्यान में राजा एवं प्रजा का समूह देखकर जंगल से लकड़ी का गड्डूर लेकर आती हुई दुर्गन्धा बालिका भी वहां कौतुकवश पहुंच गई । लकड़ी का गट्टर भूमि पर रखकर कन्या ने दूर से ही उन मुनिराज को श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया और उपदेश सुनने बैठ गई। पाप कर्म का भार हल्का होने के कारण ही उसकी रुचि

मुनि के दर्शन और उपदेश सुनने की हुई। बड़े ध्यानपूर्वक मुनिराज के मुख से धर्म- अधर्म के अच्छे बुरे फलों का उपदेश सुनते सुनते उसे जातिस्मरण हो गया, जिससे उसने जान लिया कि किस पाप के फल से उसे रानी की पर्याय से च्यूत होकर दुर्गन्धा होने के दुःख भोगने पड़े हैं। यह सब जानकर दुर्गन्धा मूर्छित हो गई और भूमि पर गिर पड़ी। प्रवचन सभा में खलबली मच गई, पुनः राजा ने भृत्यों से शीतोपचार करवाकर उसे सचेत किया और उससे पूछा- हे पुत्री! क्या कारण है जी तू यहां मूच्छित हो गई है। राजा के इस प्रकार पूछने पर दुर्गन्धा अपने पूर्व भवों का सारा वर्णन सुनाने लगी। पापों से अत्यन्त भयभीत वह बातिका रो-रोकर कहने लगी- हे राजन्! मैं किसी जन्म में काशी नरेश की महारानी थी, उस समय दुष्ट भाव से मैंने एक मुनिराज को कुत्सित अन्न का भोजन कराकर सन्ताप पहुंचाया। उसी पाप के फलस्वरूप में कुष्टी होकर मरी। पुनः भैंस, गची. शूकरी और सांभरी की पर्याय धारण की। फिर एक योजन तक दुर्गन्ध फैलाने वाली चाण्डाल पुत्री हुई। हे प्रभो! वहां से निकल कर अब इस भव में ब्राह्मण की गरीब कन्या हुई हूँ। आज मेरे किसी पुण्य कर्म का उदय आया है जिसके कारण मुझे मुनिराज का धर्मोपदेश प्राप्त हुआ है। इसी उपदेश को सुनकर मुझे पूर्व पर्याय के सारे दुःख स्मरण हो आये हैं अतः मैं मूर्छित हो गई थी। वह बालिका बार-बार पश्चाताप करती हुई विलाप करने लगी नाथ! अब में पापों से बहुत घबरा गई हूं और यह समझ चुकी हूँ कि गुरु के प्रति किये गये दुर्भावों का कैसा दुष्परिणाम भोगना पड़ता है। साधु को दिया गया वह कड़वी तूमड़ी का आहार अभी तक मुझे दुःख पहुंचा रहा है। अब में किस प्रकार इन दुःखों से छूट कर सुखी जीवन प्राप्त करूँ, यह जानना चाहती हूँ।

"सर्वार्थसिद्धि" नामक ग्रन्थ में आचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी ने महामना दिगम्बर मुनिराज की महिमा बतलाते हुए लिखा है- अवाग्विसर्ग वपुषा मोक्षमार्ग निरूपयन्तं मूर्तमिव...

अर्थात् जो वचनों से बिना बोले ही अपनी काया से मोक्षमार्ग का दिग्दर्शन कराने वाले हैं ऐसे दिगम्बर मुनिवरों को साक्षात् जिनेन्द्र भगवान् का रूप समझाना चाहिए। उन मुनियों के दर्शन से, उपदेश से तथा उन्हें आहारदान आदि देने से असंख्य कर्मों की निर्जरा होती है। ऐसे सच्चे मुनिराज आज भी इस पृथ्वीतल पर विचरण कर रहे हैं यह हम सबके सौभाग्य की

बात है। इन मुनियों के प्रति दुर्भाव करने से, उन्हें कुत्सित आहार देने से कितना कटु फल भोगना पड़ता है यह सुगन्ध दशमी के इस प्राचीन कथानक से जात होता है कि राजा की महारानी ने कड़वी तूमड़ी का आहार मुनि महाराज को करवाया जिसके फलस्वरूप भव-भव में उसे असह्य दुःखों का सामना करना पड़ा और जब एक मुनिराज का ही सम्मान किया, उनकी आज्ञा का पालन किया, तब उसका जीवन उत्थान की ओर बढ़ने लगा कुछ पापों की मन्दता होने से उस रानी के जीव ने गरीब ब्राह्मण की कन्या के रूप में जन्म तो ले लिया किन्तु वहाँ भी शरीर से दुर्गन्ध आने के कारण उसका नाम दुर्गन्धा पड़ गया। मुनिराज का सानिध्य प्राप्त होते ही उनका उपदेश सुनते-सुनते दुर्गन्धा को जातिस्मरण हो गया और वह मूर्छित हो गई। पुनः होश आने पर उसने अपने पूर्व भवों की सारी बातें समस्त जनता एवं मुनिराज के समक्ष कह सुनाई। मुनिराज की उस प्रवचन सभा में नगर के राजा भी बैठे हुए थे। उन्होंने दुर्गन्धा की बातें सुनकर मुनिराज से पूछा- हे साधु ! क्या दुर्गन्धा की कही हुई बातें सत्य हैं? मुनिराज ने उत्तर दिया- राजन् ! इस बालिका ने जो कुछ कहा है वह सब परम सत्य है, उसमें कुछ भी झूठ नहीं है। तब राजा ने पुनः कौतुकवश दुर्गन्धा की कथा विशेष रूप से विस्तारपूर्वक कहलवाया, जिसे सभी लोगों ने सुना। इस कथानक को सुनते-सुनते वहाँ बैठे हुए नर-नारी सिहर उठे। कितनी महिलाओं की आँखों से अश्रुओं की धारा बहने लगी, कितनी ही बालिकाएं उस दुर्गन्या को दया भरी दृष्टि से निहारने लगीं। कितने पुरुष वहाँ से दुर्गन्ध के कारण बाहर भागने लगे और कितने ही उस दुर्गन्धा के मुँह से उसकी आगे की कहानी सुनने हेतु नाक को बन्द कर-करके बैठे रहे। दुर्गन्धा अपनी दर्द भरी कथा कहती रही और अश्रुओं के माध्यम से अपने पापों का प्रक्षालन करती रही। दुर्गन्धा की करुण कथा सुनकर राजा ने फिर पूछा- हे मुनिवर ! इस कन्या का परलोक कैसे सुधर सकेगा ?

भगवन् ! आप करुणा के सागर हैं इस कन्या का उद्धार अवश्य कीजिए। मुनिराज ने दया भरी दृष्टि से एक बार कन्या की ओर देखा, उसे सांत्वना प्रदान की तथा उसे सम्बोधन करते हुए कहने लगे - हे पुत्री ! जिनधर्म ही संसार में जीवों का कल्याण करने वाला है, तूने अब उस धर्म की शरण प्राप्त कर ली है। अब तेरे पाप कर्मों का अन्त होने वाला है अतः तू धैर्य

धारण कर और में तुझे सुगन्ध दशमी व्रत बताता हूँ उसे करने से तेरे शरीर की दुर्गन्ध भी दूर होगी तथा परलोक में भी तेरा कल्याण होगा। कन्या मुनिराज के इन स्नेहपूरित वचन सुनकर फूली न समाई। उसका आधा कष्ट तो मुनि की सांत्वना से ही दूर हो गया था। मुनिराज के प्रति अब उसका अनुराग भी बढ़ा अतः उसने लालायित होकर उनसे विनयपूर्वक सुगन्धदशमी व्रत की विधि बताने के लिए निवेदन किया- हे भगवन् हे दयानिधि ! आप जो भी कुछ उपाय बताएंगे, मैं अपने पापों के क्षालन हेतु कठिन से कठिन व्रत भी करने को तैयार हूँ। राजा भी सुगन्ध दशमी व्रत की विधि जानने को उत्सुक थे ही, मुनिराज उस व्रत की विधि बताने जा ही रहे थे कि उसी समय आकाशमार्ग से आते हुए एक धनंजय नामक विद्याधर का विमान रुक गया। उस विद्याधर ने विमान से झाँक कर देखा तो नीचे मुनिराज विराजमान थे अतः उसने विमान नीचे जमीन पर उतारकर गुरुदेव के दर्शन किए और यथास्थान बैठ गया। समस्त दर्शकजन भी सावधान हो गए। तब कामदेव के विजेता ने वीतरागी मुनिराज राजा एवं प्रजा को सुगन्धदशमी व्रत की निचि बतलाने लगे उत्तम भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी तिथि के दिन उपवास करना चाहिए और भगवान् को कुसुमाञ्जलि चढ़ाना चाहिए। इसी प्रकार जिनमंदिर में षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी और दशमी को भी कुसुमांजलि चढ़ाना चाहिए। दशमी को पुनः उपवास धारण करके निम्न निधि से वत पालन करना चाहिए उस दिन चौबीसी भगवान का अभिषेक करके दश पूजाएं करना चाहिए। दस स्तुतियों पढ़ना चाहिए और दस जाप करना चाहिए। दस मुख वाले एक घट की स्थापना करके उसमें मन्द अग्नि जलाकर दशांगी धूप जलाना चाहिए। अष्टद्रव्य की सामग्री तैयार करके पूजन करना चाहिए। सात प्रकार का धान्य लेकर उससे स्वस्तिक लिखना चाहिए और उसमें दश दीपक रखकर जलाना चाहिए। इस प्रकार यह समस्त विधि दर्शा वर्ष तक करना चाहिए।

प्रतिवर्ष भाद्रपद शुक्ला पंचमी से लेकर दशमी तक इसी प्रकार व्रत पालन करते हुए जब दश वर्ष पूर्ण हो जाएँ तब उस व्रत का उद्यापन करना चाहिए। उद्यापन के समय शान्ति विधान पा महाभिषेक पा इसी प्रकार की कोई नहान् विधि प्रारम्भ करना चाहिए। जिन भगवान् की वेदी के आगे मन्दिर के आँगन में खूब फूलों की शोभा करना चाहिए। दश

ध्वजा, दश पताका, दश घंटिकाएं, दश जोड़ी चंवर और दश धूप घट वे सब दश-दश सजाना चाहिए। इस अवसर पर चतुर्विध संघ को पुस्तक, वस्त्र, औषधि आदि का दान देना चाहिए। आर्यिकाओं को भी वस्त्रादिक प्रदान करना चाहिए। मुनियों को शौच के साधन कमण्डलु, संयम के साधन पिच्छिका, ज्ञान के साधन शास्त्र तथा इसी प्रकार के अन्य धर्म व ज्ञान की साधना में उपयोगी वस्तुओं का यथायोग्य दान करना चाहिए। ऊपर कही गई उद्यापन की विधि यदि अल्प रूप में भी भक्ति सहित की जाए तो भी वह बहुत फलदायक होती है। ऐसा कभी नहीं सोचना चाहिए कि सजावट व दान आदि की विधि यदि थोड़ी की जाएगी तो उसका फल भी थोड़ा होगा क्योंकि साग मात्र का थोड़ा सा भोजन भी सुपात्रों को कराने से रत्नों की वृष्टि रूप महान् फल को प्राप्त कराता है। यह सब मुख्य रूप से भक्ति का ही प्रभाव जानना चाहिए। जो कोई नर अथवा नारी इस व्रत का पालन करता है, वह इस जन्म में सुख पाता है. मरकर स्वर्ग में देव होता है और फिर अनुक्रम से सुख भोगता हुआ मोक्ष के सुख को भी पा लेता है। इस प्रकार मुनिराज के द्वारा विस्तार से सुगन्धदशमी व्रत की विधि सुनकर यश: सेन नामक राजा ने, उसकी समस्त प्रजा ने तथा उस ब्राह्मण कन्या दुर्गन्धा ने एवं वहाँ बैठे प्रायः सभी श्रद्धालुओं ने अपने कल्याण की भावना से उस व्रत को ग्रहण किया। उन परमोपकारी गुरु को नमस्कार करके दुर्गन्धा अपने घर पहुँची और उसने सुगन्धदशमी व्रत की भले प्रकार से आराधना की। पुनः धर्माचरण में ही उसने अपना जीवन व्यतीत कर आर्यिकाओं के पास जाकर त्यागभावनापूर्वक समाधिमरण किया।

कथा उत्तर रूप (पद्य ४९ – १४३)

आज से लगभग २५७० वर्ष पूर्व तीर्थंकर भगवान् महावीर के समवसरण में राजा श्रेणिक ने साठ हजार प्रश्न गौतम गणधर से किये थे। उन्हीं प्रश्नों के मध्य उन्होंने इस सुगन्धदशमी व्रत के बारे में भी गौतम स्वामी से पूछा था कि भगवन ! सुगन्धदशमी नामक इस उत्तम व्रत को कब और किसने किया है. यह व्रत कैसे किया जाता है और इसका फल क्या है? मुझे इसके बारे में सुनने की इच्छा है अतः हे महामति कृपासागर ! आप यह सब मुझे बतलाने की कृपा करें। राजा श्रेणिक के इस प्रश्न को सुनकर गौतम स्वामी बोले- हे विद्वान मगध नरेशः तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है अतः में तुम्हें सुगन्धदशमी व्रत का विवरण सुनाता हूँ, तुम ध्यानपूर्वक सुनो। इसी प्रकार साक्षात् गौतम गणधर के द्वारा बताई गई सुगंधदशमी कथा का पूर्वरूप आपके समक्ष प्रस्तुत हुआ है. अब कथा का उत्तर रूप प्रस्तुत है जो व्रत के फल को सूचित करता है। आचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी ने कहा भी है- यज्जीवस्योपकाराय, तद्देहस्यापकारकम्। यद्देहस्योपकाराय, तज्जीवस्यापकारकम् ।। अर्थात् जिन क्रियाओं से जीव-आत्मा का उपकार होता है उनसे देह शरीर का अपकार होता है और जिन क्रियाओं से शरीर का उपकार होता है उनसे आत्मा का अपकार अहित होता है। सारांश यह है व्रत, नियम, संयम आदि धर्म क्रियाओं से शरीर को कष्ट तो होता है किन्तु इनसे आत्मा को पौष्टिकता- बल प्राप्त होता है और शरीर के पालन- पोषण से, उसकी साज संवार करने से आत्मा निर्बल बनती है, उसका अपकार होता है किन्तु व्रतों के महत्व को जानकर उन्हें शक्ति के अनुसार पालन करने की परम्परा प्राचीनकाल से चली आ रही है। इस कलिकाल में भी कठिन से कठिन व्रतों का पालन करने वाले महापुरुष हुए हैं। जैसे बीसवीं शताब्दी के प्रथम दिगम्बर जैनाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर महाराज ने मुनि अवस्था में "सिंहनिष्क्रीडित' आदि दुरुह व्रतों का पालन किया था। उन्होंने अपने ३५ वर्ष के दीक्षित जीवन में २५ वर्ष ६ माह उपवास में व्यतीत किए और मात्र ९ वर्ष ६ मास आहार लिया था। सुगन्धदशमी व्रत का कथानक चतुर्थकाल में प्रारम्भ हुआ था उसी को गौतम स्वामी ने राजा श्रेणिक को बतलाया था। तब से लेकर आज तक इस व्रत का पालन बराबर होता चला आ

रहा है। उज्जयिनी नगरी की उस गरीब ब्राह्मण कन्या दुर्गन्धा ने श्रद्धापूर्वक इस व्रत का पालन किया पुनः समाचिपूर्वक मरण करके वह कनकपुर नामक नगर में जिनदत्त नामक सेठ की पत्नी जिनदत्ता के गर्भ में आ गई।

कनकपुर के राजा कनकप्रभ अपनी रानी कनकमाला सहित सुखपूर्वक राज्य करते थे। जिनदत्त नाम के श्रावक उस राज्य में राजश्रेष्ठी के नाम से जाने जाते थे। अपनी धार्मिक वृत्ति, न्यायप्रियता आदि गुणों से उन्हें सदैव राजसम्मान प्राप्त होता था। सारे सुख प्राप्त होते हुए भी उस श्रेष्ठी को चिरकाल तक सन्तान सुख प्राप्त नहीं हुआ था, पुनः बहुत दिन व्यतीत हो जाने पर सेठानी ने जब गर्भ धारण किया तब सेठ की खुशी का ठिकाना न रहा और उसने घर में खूब खुशियाँ मनाई। सेठानी ने नौ माह पूर्ण होने पर एक सुन्दर कन्या को जन्म दिया। जिनदत्त सेठ ने कन्या के जन्म से ही अपने को धन्य माना और अपनी जीवन बगिया के प्रथम पुष्प के रूप में उसे स्वीकार किया। कन्या भी रूप, लावण्य, कांति एवं भाग्य-सौभाग्य से परिपूर्ण थी। उसके शरीर से निकलने वाली सुगन्ध कर्पूर से भी बढ़कर थी, वह नगर की समस्त कन्याओं में तिलक के समान श्रेष्ठ थी अतः उसका नाम तिलकमती रखा गया। वह तिलकमती कन्या नगर के समस्त नर-नारियों के प्यार-दुलार को पाती हुई दूज के चांद सदृश अपना सौन्दर्य वृद्धिगत करने लगी किन्तु उसका पूर्वोपार्जित कुछ पाप अभी भी शेष था जिसके फलस्वरूप उसकी जन्मदात्री माँ मर गई और उसे मातृवियोग का दुःख भोगना पड़ा। उसके पिता ने काम के वशीभूत हो अपना दुसरा विवाह कर लिया। गोवर्धनपुर के एक वाणिक श्रेष्ठी की पुत्री बन्धुमती उसकी धर्मपत्नी बनकर जब घर में आई तब घर का सुखद वातावरण दुख में परिर्वितत होने लगा। सौतेली माँ के जो उदाहरण संसार में प्रचलित हैं उनमें से ही बन्धुमती भी एक जीवन्त कंचानक बन गई परन्तु वासनापूरित पिता तो इन सब बातों से अनभिज्ञ अपनी नई पत्नी के साथ रागरंग में व्यस्त रहता था। उसके साथ तामसी वृत्ति से भोगविलास करते हुए दिन व्यतीत हो रहे थे, इसी बीच बन्धुमती ने एक कन्या को जन्म दिया, जिसका नाम रखा गया तेजमती।

नीच प्रकृति सेठानी अपनी इस पुत्री तेजमती को खूब लाड़-प्यार से पालने लगी और सौतेली कन्या को दुख देने लगी। सेठ अपनी नई सेठानी के वश में था फिर भी उसका वह व्यवहार देखकर सेठ के मन में बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुआ और उसने अपनी तिलकमती कन्या को दो दासियों के सुपुर्द कर दिया तथा उन्हें आज्ञा प्रदान की कि तुम हर प्रकार के साधनपूर्वक इस कन्या का पालन पोषण करो। यह बात बिल्कुल सत्य है कि माँ के बिना बच्चों का जीवन अत्यन्त करुणापूर्ण बन जाता है। तीव्र कर्मों की गति के समक्ष अनेक पुरुषार्थ भी व्यर्थ हो जाते हैं तथा जब तक उनका फल पूरा होकर समाप्त नहीं हो जाता तब तक उन्हें भोगना ही पड़ता है। दुःख जाता है तो सुख देकर सेठ की पुत्री तिलकमती जो अपनी शारीरिक सुगन्धी के कारण 'सुगन्धा'- नाम से जानी जाती थी, उसके दुखों का काल अब समापन की ओर था और सुख की उषा बेला उसके जीवन में प्रवेश कर रही थी। सुगन्धा की सुखद कहानी का प्रारम्भीकरण इस प्रकार होता है- एक दिन सेठजी को राजा का आदेश मिला कि उन्हें किसी दूसरे द्वीप में जाकर अच्छे-अच्छे रत्न खरीद कर लाना है। अतः राजाज्ञा का पालन करना सेठ का परम कर्तव्य बन गया। उसने घर से विदा होते समय अपनी पत्नी बन्धुमती से कहा- हे प्रिये! में बहुत दूर विदेश को जा रहा हूँ, पता नहीं कब तक वापस आऊंगा अतः तुम यथासमय इन दोनों पुत्रियों का विवाह कर देना, इस शुभ कार्य में मेरा इन्तजार मत करना। सेठजी के चले जाने पर सेठानी की प्रवृत्ति अधिक क्रूर हो गई, वह सुगन्धा को फटे, गन्दे कपड़े पहनाने लगी और उसे घर के कूड़े-कचरे वाले स्थान में सुलाती थी किन्तु जैसे हीरा कचरे में भी अपनी चमक फैलाता है, कमल कीचड़ में भी ऊपर खिलकर अपनी सुगन्धि बिखेरता है और चन्दन सों से संयुक्त होने पर भी शीतलता तथा खुशबू नहीं छोड़ता है उसी प्रकार वह कन्या सुगन्धा गन्दे कपड़े में भी रूपसुन्दरी प्रतीत होती थी। कुछ काल बीतने पर सुगन्धा की याचना करने वाले वर आने लगे किन्तु सेठानी उसका विवाह स्वीकार न कर अपनी औरत (सगी) पुत्री तेजमती को ही उन्हें दिखलाती थी। वह आगन्तुक अतिथियों से सुगन्धा की निन्दा और तेजमती की प्रशंसा करती हुई कहती थी देखिए ! लड़की शुभ लक्षण वाली नहीं है। इसके जन्म लेते ही इसकी माँ मर गई और युवा होते ही इसके पाप कर्म के कारण पिता दूर देश चले गए। अतः हे बंधु ! मैं नहीं चाहती

हूँ कि आपका सुन्दर, निरोगी, कुलीन पुत्र ऐसी कन्या को ब्याह कर ले जाते जिससे आपके घर में भी कोई विपत्ति आते। आप तो मेरी इस तेजमती कुमारी के साथ अपने पुत्र का विवाह करके अपने परिवार में सुख संपत्ति का साम्राज्य स्थापित कीजिए। उन लोगों के कुछ उत्तर न देने पर पुनः बन्धुमती कहने लगती मेरी पुत्री तिलोत्तमा के समान सुन्दरी है और मोतियों की माला के समान अनुपम शान्ति प्रदान करने वाली है। आप ही बताएँ कि आपको उसमें कौन से अवगुण नजर आते हैं? आप लोग उसे क्यों नहीं वरण करना चाहते हैं? किन्तु जब पुण्य प्रबल होता है तो कीर्ति स्वयं प्रसारित होने लगती है उसे किसी के दरवाजे जाकर भीख माँगने की आवश्यकता नहीं होती है। यही खेल सुगन्धा के साथ चल रहा था। बन्धुमती सेठानी उसकी जितनी अधिक निन्दा करती और अपनी पुत्री की प्रशंसा करती थी वर की ओर से उतनी ही माँग सुगन्धा (तिलकमती) की अधिक आने लगी। सेठानी ने सभी तरह के प्रयास करके जब यह जान लिया कि जबरदस्ती किसी की प्रीति में अपनी पुत्री के साथ नहीं करा सकती हूँ तब उसने अन्तरंग छाल का सहारा लिया और तिलकमती का ही विवाह एक सुन्दर नवयुवक के साथ करना स्वीकार कर लिया।

उसने प्रारम्भ में तिलकमती को ही दिखा दिया किन्तु विवाह की तैपारी तेजमती के लिए करने लगी। यह अन्तरंग का मायाजाल बाहर में कोई जान न सका अंतः बन्धुमती मन ही मन बड़ी प्रसन्न रहने लगी। शमशान भी स्वयंवर मंडप बन गया पुण्य के प्रभाव से ! नगर में चारों ओर खुसियों छाई हैं. यत्र-तत्र तोरणद्वारों पर बन्दनवार सजाए जा रहे हैं। नगर की गलियों सुगन्धित फूलों से सजाई जा रही है, तरह-तरह के संगीत स्वर नगर में गूंज रहे हैं क्योंकि आज नगर सेठ की पुत्री तिलकसुन्दरी का विवाह होने वाला है। गांव भर की स्त्रियों उस सेठ के घर में एकत्रित हुई और बन्धुमती सेठानी की उदारता तथा तिलकमती के पुण्य की चर्चा करने लगीं। इधर माया की मूर्ति बन्धुमती तो कुछ और ही करना चाहती थी अतः उसने अपनी कूटनीति का जाल बिछाना शुरू कर दिया। सन्ध्या का समय हुआ, बारात चढ़ने में कुछ ही देर थी कि उसने तिलकमती को मंगल स्नान कराकर सुन्दर वस्त्राभूषणों से सुसज्जित किया और अपने साथ उसे शमशान भूमि में ले गई। वहाँ एक स्थान पर तिलकमती को बैठाकर उसके चारों और उसने चार दीपक प्रज्वलित कर दिया और उस

सौतेली पुत्री तिलकमती से कहने लगी- हे सुन्दरी कन्ये। यहाँ बैठकर तू अपने योगा वर की प्रतीक्षा कर। कन्या बेचारी इस विवाह पद्धति से बिल्कुल अनभिज्ञ थी किन्तु अपनी दुष्ट माता के समक्ष कुछ भी कहने का साहस न कर सकी। अब बन्धुमती अपनी दासियों सहित घर वापस आ गई और उसी शुभ लग्न में उसी वर के साथ अपनी कन्या तेजमती का विबाह कर दिया। अपनी सफलता पर प्रसन्न बन्धुमती पुत्री तेजमती के अखंड सौभाग्य की कामना करने लगी। संयोग की बात है कि उसी रात्रि में अपने महल की छत से राजा नगर की शोभा देख रहा था। श्मशान में तिलकमती की ओर उसकी दृष्टि पहले ही वह मन में सोचने लगा यह कोई सुरकन्या है या किन्नरी है? अथवा कोई सुकुमारी जोगन किसी पूजा में लगी हुई है? वास्तविकता को जानने हेतु राजा अपने हाथ में तलवार लेकर श्मशान भूमि की ओर चल पड़ा। वहाँ पहुंचकर राजा ने कन्या से पूछा- है कन्ये! तू कौन है और किस कार्य के लिए यहाँ बैठी है? कन्या बोली- मेरे पिता को राजा ने रत्न लाने के लिए बाहर भेज दिया है। मुझे ऐसा लगता है कि मेरी सौतेली माता ने मुझे विवाह के सम्बन्ध में धोखा देकर यहाँ बैठा दिया है।

उसने मुझसे कहा है- है पुत्रि! तेरा वर यहीं आवेगा। उसी से तू विधिवत् अपना विवाह कर लेना। अब मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि मैं क्या करू? किसे अपना पति मानु ? आपके अतिरिक्त अभी तक यहाँ कोई नहीं आया है। बिना किसी की इच्छा के में उसके साथ विवाह भी कैसे कर सकती हूँ? प्रात:काल जब में घर वापस जाऊंगी तभी ज्ञात हो सकेगा कि मेरी माता ने क्या गुल खिलाया है। संभवतः तेजमती का विवाह हो चुका होगा। तिलकमती की बात सुनकर राजा ने उससे पूछा- हे मृगलोचन सुन्दरी ! यदि ऐसी बात है तो तू मुझसे ही अपना विवाह क्यों नहीं कर लेती ? इतना कहकर राजा उसके उत्तर की प्रतीक्षा करने लगे। अन्ततोगत्वा तिलकमती ने ओम् का उच्चारण करके अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी और उसके पुण्यप्रभाव से राजा ने तुरन्त उसका पाणिग्रहण कर लिया। संसार में पुण्य और पाप कर्मों का अतिशय माहात्म्य है। इस समय तिलकमती कन्या के अल्प पाप एवं तीव्र पुण्य का उदय आया अतः श्मशान भूमि में भी राजा जैसा उत्तम वर प्राप्त हो गया। रात्रि के अन्धकार में तिलकमती अपने पति को ठीक से पहचान भी न सकी और न राजा ने

अपना वास्तविक परिचय ही उसे बताया। प्रातः काल ज्यों ही सूर्यकिरण प्रगट हुई त्यों ही राजा वहाँ से उठकर जाने लगे। तब तिलकमती ने उनका अंचल पकड़कर उन्हें रोक लिया और कहा- आप सर्प के समान मुझे डस कर कहाँ जा रहे हो? तब राजा ने कहा- हे प्रिये! मेरा नाम गोप है और में अब अपने घर जा रहा हूँ, प्रतिदिन रात्रि में तुम्हारे घर आया करूंगा। हे सुन्दरी इस समय तुम भी अपने घर जाओ। इधर बन्धुमती सेठानी ने श्मशान से लौटकर लोगों में पह कहना प्रारम्भ कर दिया- अरे, यह पापिनी कन्या इस विवाह के मंगल अवसर पर न जाने कहाँ चली गई? समस्त स्त्रियों का नाम ले-लेकर पूछती और तिलकमती को गालियाँ देती हुई उस बन्धुमती ने उसे खूब बदनाम करने का षडयंत्र रचा। रो-रोकर सबके सामने कहने लगी कि अब पति के सम्मुख में क्या मुँह दिखाऊंगी।

अन्ततोगत्वा वह जिस श्मशान स्थल पर तिलकमती को छोड़ कर आई थी वहीं जा पहुँची। वहीं तिलकमती को देखकर साथ गए स्त्री-पुरुषों के समक्ष बन्धुमती सेठानी रो-रोकर कहने लगी-अरी कुपुत्री ! तू यहाँ कहाँ चली आई? अरी कलमुंही तूने यहाँ क्या किया? तेरे पिता के सामने में क्या बताऊंगी? सेठानी के इस प्रकार उत्तेजनात्मक लाञ्छनयुक्त वचन सुनकर तिलकमती बोली - हे माता। तुम्हारी आज्ञानुसार ही तो में यहाँ आकर बैठी हूँ और एक गोप के साथ मेरा विवाह हुआ है। कन्या की बात सुनकर उस मायाचारिणी सेठानी ने उसे दुत्कारा और कहा- देखो इस लड़की की करतूत, स्वयं पापाचार करके अब मुझे ही बदनाम करना चाहती है। इस प्रकार नगरनिवासियों में तरह-तरह की चर्चाएँ होने लगीं, कोई सेठानी को दोष देता कि सौतेली माता होने के कारण इसने यह मायाजाल रचा है और कुछ लोग तिलकमती के चरित्र पर सन्देह करने लगे। फिर सेठानी उसे पकड़कर अपने घर लिवा लाई और लोकरंजन का खूब ढोंग रचा। वास्तव में तो वह अपनी पुत्री का विवाह रचाकर अतिशय प्रसन्न थी तथा तिलकमती को अपने रास्ते से दूर करना चाहती थी। सचमुच ही विधाता ने ऐसी स्त्रियों के लिए ही मायाचारी का प्रमाणपत्र प्रदान किया है। राजा कनकप्रभ प्रतिदिन अपनी पत्नी तिलकमती के पास गुप्तरूप से रात्रि में आने लगे और उन दोनों का परस्पर प्रेमानुराग बढ़ने लगा। कन्या का वृद्धिगत सौन्दर्य देखकर उसकी सौतेली माँ ने एक

दिन उससे कहा कि तेरा पति कया कार्य करता है? तेरे लिए वह कभी कुछ भेंट भी नहीं लाता है। तिलकमती लज्जित मुद्रा में मौन रहीं, तब सेठानी बोली- अरी मूर्ख! तू अपने पिनडार पति से दो अच्छी बुहारी तो मांग। वह इसी माध्यम से उसके पति का परिचय जानना चाहती थी। तिलकमती ने उस रात अपने पति से बुहारी लाने की बात कही तब उसके पति ने दूसरे दिन रत्नजटित सुवर्णमय दो सुन्दर बुहारी लाकर दे दी। इसके साथ ही उस दिन गुप्तवेषधारी राजा ने उसे बहुमूल्य वस्त्र और सोलह प्रकार के रत्न आभूषण भी प्रदान किये। रात्रि के अन्धेरे में ही तिलकमती ने पतिदेव के चरण प्रक्षालन किए और उस रात राजा उसी के पास रहा। प्रातःकाल जब पति उसके पास से चला गया तब तिलकमती ने वे सभी कीमती वस्तुएँ अपनी माता को दिखाई किन्तु ईश्यातु मां के हृदय में से सब चीजें अंगारे के समान धधकने लगीं। आभूषणों पर राजा का नाम अंकित देखकर वह बील उठी अरी दुरात्मन्। लगता है किसी चोर को तूने अपना पति बना लिया है? जल्दी से तू इन वस्त्राभूषणों को उतार दे अन्यथा यदि इन्हें कोई देख लेगा तो राजा हमें मृत्युदंड दे देगा। इस प्रकार डॉट-फटकार कर सेठानी ने उसके सारे वस्त्र आभूषण उतरवा लिये और उस तिलकमती को फटे-पुराने कपड़े पहनाकर उसके दुर्भाग्य की कामना करने लगी। इसी बीच बन्धुमती के पति सेठजी विदेश से रत्न लेकर वापस आ गए। आते ही सेठानी ने उनकी पुत्री की कथा प्रारम्भ कर दी।

हे स्वामी आप अपनी पुत्री की करतूत देखिए। इसने किसी चोर को अपना पति बना लिया है और उस चोर ने राजा के यहाँ से चोरी करके इसे ये आभूषण दिए हैं। सारे राजघराने के जेवर दिखाते हुए सेठानी अपने पति से कहने लगी। हे कान्त! यह कन्या अपने कुटुम्ब के सिर पर काल बनकर आ गई है. ऐसा लगता है कि अब यह हमें सुखपूर्वक जीने नहीं देगी। पत्नी की ये सब बातें सुनकर और उन बहुमूल्य वस्त्राभूषणों को देखकर वह धैर्यवान् अनुभवी सेठ भी कुछ चक्ति एवं शंकित हो उठा। परदेश से आकर इन क्रियाकलापों को देखते ही उसकी थकान और भी बढ़ गई थी, फिर भी भोजन करके शीघ्र ही वह चतुर सेठ उन सब वस्तुओं को लेकर राजा के पास पहुँचा और उनके समक्ष सारे आभूषण रखकर पत्नी द्वारा बताई हुई सच्ची बात कहने लगा- महाराज! आपकी इन सब वस्तुओं को किसी

चोर ने ले जाकर मेरी बेटी को दिया है आप इन्हें वापस ले लीजिए क्योंकि मैं राजद्रोही नहीं बनना चाहता हूँ। सेठ की ये बातें सुनकर राजा सब कुछ शीघ्र ही समझ गया किन्तु अनजान बनकर मुस्कुराते हुए बोला अच्छा इन वस्तुओं को तो रहने दो, परन्तु तुम उस चोर का पता तो लगाओ। सेठ राजा के पास से घर आया और अपनी उस कन्या से कहने लगा- हे कल्कमूर्ति ! क्या तू अपने पति को जानती है? पुत्री ने कहा हाँ तात! जानती तो हूँ किन्तु केवल उनके चरण पखारने के द्वारा ही में उन्हें पहचान सकती हैं। सेठ ने जाकर यह बता राजा से कही, तब राजा ने कहा सेठजी। ठीक है, इस बात की खोजबीन करने के लिए में अपने समस्त परिवार सहित शीघ्र तुम्हारे घर में भोजन करने आऊंगा, उसी दिन तुम नगर के अन्य अतिथियों को भी आमंत्रित करना।

सेठ सन्तुष्ट होकर घर वापस लौट आया। अपने घर में राजा के योग्य आतिथ्य सत्कार की तैयारी करके सेठजी ने सुन्दर मिष्टान्न युक्त भोजन बनवाया और राजा को एवं नगरनिवासियों को आमंत्रण भेज दिया। समस्त अतिथियों के पधारने पर राजा ने तिलकमती की आंखों में पट्टी बंधवाकर सबके चरण धोने का आदेश दिया अतः उसने पंक्ति में बैठे हुए क्रम से सबके पैर धुलना प्रारम्भ कर दिया। तिलकमती ने अपने कोमल हाथों से अनेकों के पैर घुलवाए और कहती गई- यह नहीं है. यह नहीं है, यह भी नहीं है। पुनः जब राजा का नम्बर आया तो उनके चरण कमलों का स्पर्श करते ही बोल उठी है पिता। यही वह चोर है जो शमशान भूमि में स्वयं जाकर मेरा पति हुआ था। तिलकमती की यह बात सुनते ही सेठ अवाक् रह गया और डर के मारे कांपने लगा कि अब राजा मुझे और मेरे परिवार को पता नहीं क्या दण्ड देगा? इधर सभा में बैठे समस्त अतिथि राजा की ओर देख कर हंस पड़े और बोले- क्या यह बात भी सत्य हो सकती है कि अपने नगर का राजा ही चोर है? कुछ लोग राजा को भड़काने लगे कि इस लड़की की यह हिम्मत जो राजा को चोर की संज्ञा प्रदान की है, इसे तो अपने देश से ही निष्कासित कर देना चाहिए। इसी प्रसंग में बन्धुमती सेठानी को भी सुनहरा अवसर हाथ लगा और वह भी राजा से उसकी निन्दा करने लगी तथा तिलकमती के लिए उचित दण्ड देने की प्रार्थना करने लगी। ऐसा विचित्र माहौल देखकर राजा बोले-आप लोग व्यार्थ हंसी मजाक एवं इसकी निन्दा मत करें। सचमुच मैं ही

वह चोर हूँ जिसकी तिलकमती को खोज थी। लोगों के द्वारा यह पूछने पर कि इस चोरी का वास्तविक रहस्य क्या है? इसके उत्तर में राजा ने श्मशान में घटी समस्त घटना सबके समक्ष कह सुनाई। बन्धुमती सेठानी की सारी करतूतें सेठ के सामने आ गई। सेठजी अपनी कन्या को सीने से लगाकर उस पर हुए अत्याचारों को सोच-सोचकर आंसू बहाने लगे।

पद्यपि उन्हें अब अपनी बेटी का वियोग अत्यन्त सन्ताप उत्पन्न कर रहा था. तथापि सांसारिक रीति के अनुसार उन्होंने राजा के साथ उसका विवाह महोत्सव किया एवं कन्या के पुण्य की खूब सराहना की। इस अघटित पटना से सभी नगरवासी कहने लगे धन्य है यह कन्या जिसने राजा को पति रूप में पाया है। इसने पूर्व जन्म में अवश्य ही किसी व्रत का भक्तिपूर्वक पालन किया होगा। सेठानी को उसके दुष्कर्मों का प्रायश्चित्त देने हेतु सेठजी ने उसे काला मुंह करके नगर भ्रमण कराया। उसे देखकर जनसमूह बन्धुमती के कृत्यों की निंदा करते हुए कहने लगा-वास्तव में दुर्जन प्राणी सज्जनों को कष्ट पहुंचाते हैं किन्तु उससे सज्जनों को समृद्धि ही प्राप्त होती है न कि उन्हें कोई हानि होती है। जैसे सूर्य पृथ्वी को संताप देता है किन्तु उससे कमल शोभारूपी लक्ष्मी को ही प्राप्त होता है उसी तरह सज्जनों के लिए शूल भी फूल बन जाते हैं।

व्रत विधि

विधि इस प्रकार है- कि भादों सुदी दशमी के दिन चारों प्रकार के आहारों को त्यागकर समस्त गृहारम्भ का त्याग करे और परिग्रह का भी प्रमाणकर जिनालय में जाकर श्री जिनेन्द्रदेव की भाव सहित अभिषेकपूर्वक पूजा करें। सामायिक स्वाध्याय करे। धर्म कथा के सिवाय अन्य विकथाओं का त्याग करे, रात्रि में भजनपूर्वक जागरण करे। पश्चात् दूसरे दिन चौबीस तीर्थंकरों की अभिषेकपूर्वक पूजा करके अतिथियों (मुनि व श्रावक) को भोजन कराकर आप पारणा करे। चारों प्रकार के दान देवे। इस प्रकार दश वर्ष तक यह व्रत पालन कर पश्चात् उद्यापन करें। अर्थात् चमर, छत्र, घण्टा, झारी, ध्वजा आदि दश-दश उपकरण जिनमंदिरों में भेंट देवे और दस प्रकार के श्रीफत आदि फल दश घर के श्रवकों को बांटे। यदि उद्यापन की शक्ति न होवे, तो दूना व्रत करें।

उत्तम व्रत उपवास करने से, मध्यम कांजी आहार और जघन्य एकाशन करने से होता है। इस व्रत के दिन श्री शीतलनाथ भगवान की पूजा करें एवं "ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐ अर्हं श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय नमः" मंत्र का जाप्य करें।

भव्य जीव यदि यह व्रत पालें तो अवश्य ही उत्तमोत्तम सुखों को पा लेगा।

सन्दर्भ सूची

१. सुगंधदशमी कथा, डा० हीरालाल जैन, १९६६ भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

२. सुगंध-दशमी-व्रत-कथा, जैनसाहित्यप्रसारक

३. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परंपरा, चतुर्थ खण्ड, डा० नेमीचन्द्र शास्त्री, आचार्य शान्तिसागर छाणी ग्रंथमाला, पृष्ठ ३०३

४. सुगंधदशमी कथा, विमलसेन

५. सुगंधदशमी कथा, आर्यिका ज्ञानमती

नि:कलंक सतेज सर्वबलं जिन शीतल:

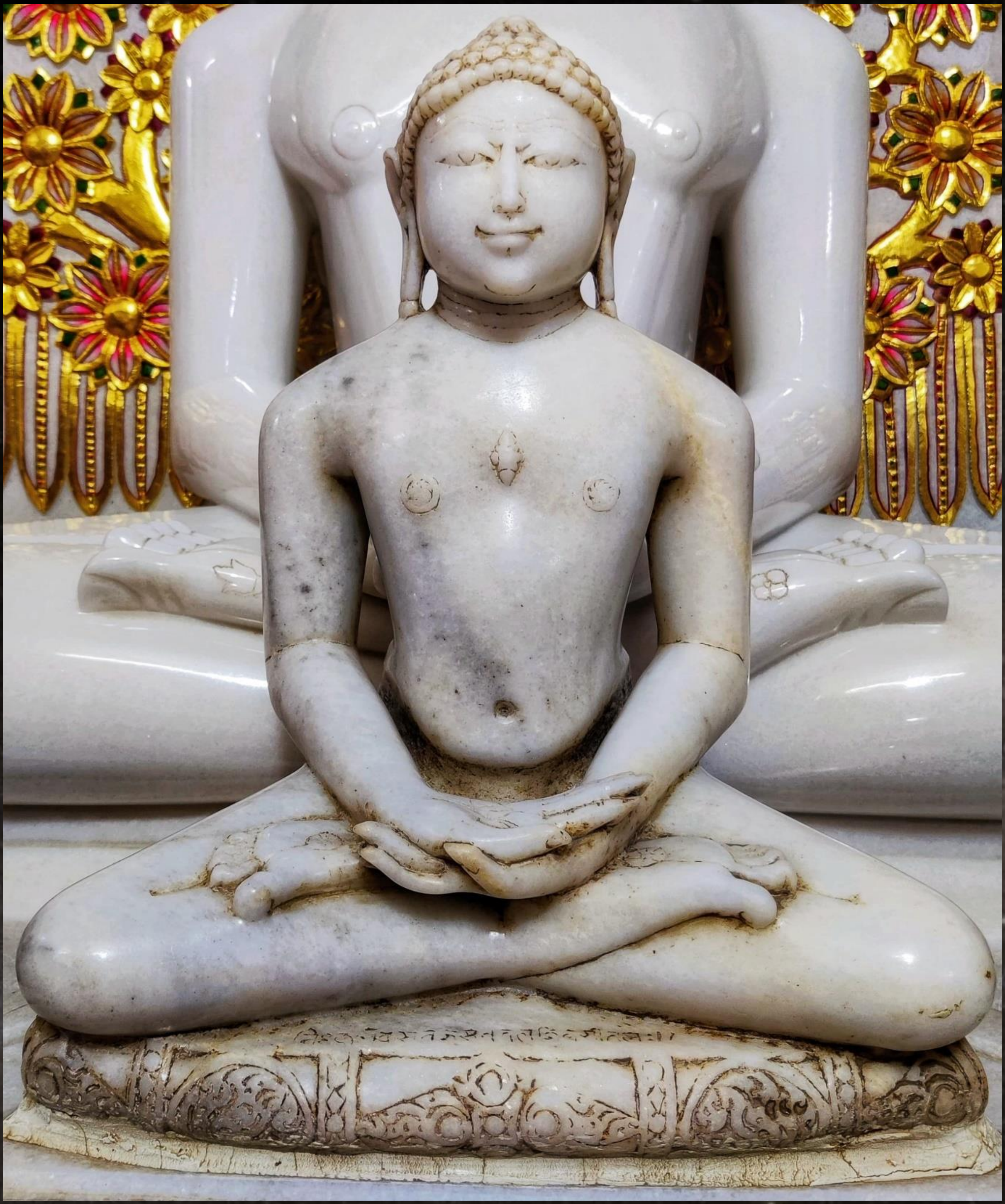

कोटड़ी, जिला भीलवाडा जिनालय के मुलनायक १०वे
तीर्थंकर जिनेन्द्र शीतलनाथ